सप्तम् अध्याय ￼ ।। ￼ पृष्ठ 167-186

"भूले बिसरे चित्र' उपन्यास

का

उद्देश्य"

* * *

उद्देश्य तत्व का स्वरूप :

उपन्यास का अन्तिम तथा प्रमुख संगठन तत्व उसका उद्देश्य होता है । कुछ लोग केवल मनोरंजन के लिए उपन्यास पढ़ते हैं । यह तथ्य होने पर भी उपन्यास केवल मनोरंजन के लिए लिखा जाता है, यह तथ्य नहीं । प्राचीन युगीन कथाओं की रचना प्रायः दो उद्देश्यों से की जाती थी । एक तो उपदेशात्मकता की दृष्टि से जिसका आधार प्रायः नैतिक होता था तथा दूसरे मनोरंजन की दृष्टि से जिसका आधार कौतूहल जनीत और कल्पनात्मक होता था । किन्तु आधुनिक उपन्यास केवल मनोरंजन अथवा उपदेशात्मकता के लिए नहीं लिखे जाते हैं । मानव जीवन के विविध परिवेशों की प्रायः सभी संभाव्य समस्याएं उपन्यास में उठायी जाती हैं और उनपर चिंतन किया जाता है । इस प्रकार प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में प्रायः सभी उपन्यासों के पीछे कोई न कोई उद्देश्य या मानव जीवनके प्रति विशिष्ठ दृष्टिकोण विद्यमान रहता है ।

आधुनिक उपन्यासों में उद्देश्य तत्व के प्रति विशेष आग्रह दिखाई देता है । आज का उपन्यासकार ऐतिहासिक, सामजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक अथवा पूर्णतः काल्पनिक किसी भी प्रकार की रचना किसी - न - किसी उद्देश्य से करता है । उपन्यास में कथानक शरीर-तत्व होता है और चरित्र - चित्रण उसका प्राण-तत्व । उसी प्रकार उपन्यास का उद्देश्य उसका आत्मा तत्व होता है । जिस प्रकार शरीर के बिना प्राणों का स्पन्दन नहीं हो सकता उसी प्रकार शरीर और प्राणों के बिना आत्मा भटकती है । इसीलिए इन तीनों तत्वों का उचित समन्वय और सन्तुलन एक सफल उपन्यास के लिए अति आवसश्यक है । इस प्रकार उपन्यास में उद्देश्य तत्व का भी अपना अलग महत्व सर्वविदित है । डा. प्रतापनारायण टंड़न का कथन है कि, "वास्तव में उपन्यासकार अपनी कृति में किसी विशिष्ट दृष्टिकोण का सहारा लेता है और उसके आधार पर मानव जीवन का मूल्यांकन करते हुए अपने जीवन दर्शन का स्पष्टीकरण करता है । वह मनुष्य के जीवन के विविध पक्षों को गहराई से परखने की चेष्टा करता है ।"[1] एक युग और समाज के जीवन चित्रण द्वारा वर्तमान युग और समाज जीवन को प्रेरणा देने का काम भी उपन्यास का है । एक साथ पूरे जीवन की झांकियाँ देकर मानव जीवन की सफलता - असफलता और परिवेश का ज्ञान प्राप्त करके हम अपने दैनिक जीवन में सामंजस्य और सफलता प्राप्त कर सकते हैं । इस प्रकार उपन्यास का उद्देश्य बहुमुखी होते हुए भी मानव जीवनका कल्याण करना और नव जागृति की लहर पैदा करना है ।

उपन्यासकार मानव जीवन के विविध पक्षों को गहराई से परखने की चेष्टा करता है ।

उपन्यास में अभिव्यक्त विचारों को उसके दृष्टिकोण की पृष्ठभूमि में रखकर ही परखा जा सकता है तथा यह समझना भूल हो सकती है कि उसमें जो कुछ भी और जहाँ कहीं भी कहा गया है वह उस लेखक का अपना विचार या मान्यता है । यही कारण है कि कभी-कभी यह समझना कठिन हो जाता है कि किसी कृति में लेखक की अपनी मान्यताएँ या स्थापना क्या है । बहुधा कथा के माध्यम से लेखक अपने विचारों को व्यक्त करता है तथा अन्य पक्षों द्वारा उन्हीं के खण्डन - मण्डन का प्रयत्न करता है । यदि लेखक वास्तव में महान कलाकार है, तो उपन्यास में उद्भूत विचारधारा बौध्दिकता के क्षेत्र में एक नवीन उपलब्धि होती है; अन्यथा उसकी कृति सामान्य रूप से केवल मनोरंजन की ही वस्तु समझी जाती है और थोड़े ही समय में उसका जीवन समाप्त हो जाता है । अनेक आधुनिक समीक्षकों के मतानुसार, "जीवन दर्शन से रहित उपन्यास एक शुष्क कृति बनकर रह जाता है ।"[2] पाठकों के स्तर और रुचि के अनुसार उपन्यास के स्वरूप में भी क्रमशः उद्देश्यगत भिन्नता पायी जाती है । पाठक की सुरुचि के विकास के साथ उपन्यास मनोरंजक होते हुए भी समस्याप्रधान होते जा रहे हैं । विषयगत गांभीर्य और उद्देश्यगत गूढ़ता भी आज के उपन्यासों में मिलती है ।

किसी भी औपन्यासिक कलाकृति की श्रेष्ठता उसके निरूपित उद्देश्य में विहित होती है । कुछ समीक्षक सिर्फ कलात्मक अभिव्यक्ति को ही अपनी रचना का उद्देश्य मानते हैं किन्तु भगवती बाबू का दृष्टिकोण है कि, "सफल साहित्य वह है जिसमें ज्ञान के स्थान पर मनोरंजन अथवा आनन्द की प्राप्ति हो । वैसे ज्ञान बौध्दिक मानव का अविलग भाग है, लेकिन साहित्य का क्षेत्र ज्ञान की उपलब्धि के नियमों से सम्बध्द नहीं है । .... कला का सम्बन्ध मन से है, मस्तिष्क से नहीं है । मन का क्षेत्र अनुभूति है, ज्ञान नहीं है ।"[3] उनकी यह भी मान्यता है - "मेरा अपना एक निजी दर्शन भी है जो मेरी बुध्दि की उपज है । मेरा समस्त साहित्य अपने दर्शन की भावनात्मक अभिव्यक्ति ही तो है । अपने दार्शनिक दृष्टिकोण के विरोध का मुझे पता है - इसलिए अपने दर्शन को प्रतिपादित करने के लिए मैंने तर्क के बौध्दिक क्षेत्र को नहीं अपनाया । मैंने साहित्य कला के भावनात्मक क्षेत्र को अपनाया है । मेरे अन्दर बौध्दिक प्राणी के साथ - साथ भावनात्मक कलाकार भी है ।"[4] वर्माजी उपन्यास को कहानी का विकसित रूप स्वीकार करते हैं और उसमें भी वे कहानी वाले तत्व को प्राथमिकता देते हैं । उनका मंतव्य है - "उपन्यास या लम्बी कहानी में कथावस्तु का विस्तार ही एकमात्र विस्तार स्वीकृत होता है चाहे वह एक कथा का हो, चाहे वह विस्तार अनेक कथाओं को जोड़कर हो ।"[5]

पूर्ववर्ती युग में लिखे गये उपन्यासों में उद्‌देश्यगत भिन्नता के कारण स्वरूपगत वैभिन्न भी मिलता था । उनमें समाज के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित समस्याओं को गम्भीर रूप में प्रस्तुत नहीं किया जाता था । किन्तु आज उपन्यास का उद्‌देश्य केवल मनोरंजन करना नहीं रह गया है । मानव जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्याएँ आज जिस रूप में उपन्यास में उठायी जाती हैं, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उपन्यास इस दृष्टिकोण से सबसे अधिक समर्थ साहित्यिक माध्यम है । किसी उपन्यास में उठायी गयी समस्याएँ और उनके प्रति लेखक का दृष्टिकोण जितने गहन स्तर पर सत्य का स्पर्श करेंगे उस कृति की सफलता की सम्भावनाएँ भी उतनी-ही अधिक होंगी । वास्तव में उपन्यास में अधिकांशतः युगीन जीवन से सम्बन्धित समस्योओं को ही प्रश्रय दिया जाता है और अन्य समस्याओं के वे रूप उपस्थित किये जाते हैं जिनका सम्बन्ध मनुष्य की मूलभूत मनोभावनाओं से होता है । इस दृष्टि से आलोच्य उपन्यास खरा उतरता है । डा.प्रताप नारायण टंडन के मतानुसार, 'उपन्यासकार की प्रमुख चिंता मानव जीवन है और उस मानव जीवन के माध्यम से ही वह उन विधानों में रुचि लेता है जो मानव जीवन को प्रभावित या संयोजित करते हैं ।"[6]

"भूले बिसरे चित्र' सामाजिक उपन्यास होते हुए भी उसमें राजनीतिक तत्वों का भी सम्मिश्रण हुआ है । हिन्दी में राजनीतिक तत्वों का अविर्भाव उस समय से हुआ, जब कांग्रेसी आन्दोलन ने जोर पकड़ा । महात्मा गांधी द्वारा चलाये गये विभिन्न आन्दोलनों ने न केवल देश में सामाजिक स्तर पर क्रान्ति का जागरण किया, वरन साहित्यिक स्तर पर भी । ब्रिटिश सत्ता और साम्राज्यवाद से संघर्ष, स्वतंत्रता की माँग, क्रान्तिकारी आन्दोलन आदि कई ऐसे उपन्यासों की प्रेरणा रही, जिन्हें मुख्यतः राजनीतिक उपन्यास नहीं भी कहा जा सकता - जैसे - 'शेखरः एक जीवनी, "टेढे मेढे रास्ते,' 'भूले बिसरे चित्र' आदि । इससे यह सिध्द हो जाता है कि व्यक्तिगत जीवन में राजनीतिक विषयों और समस्याओं का व्यापक प्रभाव पड़ने लगा था ।

मध्यवर्गीय जीवन को प्रभावित करनेवाले कांग्रेसी आन्दोलन को लेकर लिखे गये प्रमुख राजनीतिक उपन्यासों में भगवतीचरण वर्मा कृत 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' और 'भूले बिसरे चित्र' उल्लेखनीय हैं। इनमें उस समूचे युग को समेटने का प्रयत्न किया गया है, जिसकी पृष्ठभूमि मुख्य रूप से कांग्रेसी आन्दोलन द्वारा बनती है । किन्तु इन उपन्यासों में राजनीतिक उपन्यासों की तरह राजनीति को प्रमुखता नही दी गई है; बल्कि कुछ ही चरित्रों के माध्यम से विभिन्न राजनीतिक घटनाओं का विश्लेशण प्रस्तुत किया गया है ।

'भूले बिसरे चित्र' का उद्देश्य :

'भूले बिसरे चित्र' भगवती बाबू की रचना प्रक्रिया में महत्व पूर्ण स्थान रखता है । इसमें सामंती वर्ग के एक परिवार की चार पीढ़ियों की कहानी द्वारा सामंती वर्ग का पतन एवं मध्यवर्ग के उदय का विश्लेषण हुआ है । इसमें बीच - बीच में उन परिस्थितियों की ओर संकेत हुआ है, जो मनुष्यको पतित करती हैं और उसकी मानवता समाप्त करती हैं । इस प्रकार भगवती बाबू इन विकृतियों के मूल में परिस्थितियों को दोष देते हैं और उनपर प्रहार करते हैं । पूँजीवाद के अभिशाप की प्रतिक्रिया व्यक्तिवादी चिंतन में भी हुई थी और मानव विकृतियों का मूल कारण पूँजीवादी परिस्थितियों को स्वीकारा गया था । इन परिस्थितियों के मूलोच्छेदन के लिए व्यक्तिवादी दृष्टिकोण भगवती बाबू ने विकसित किया है ।

'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में सामन्ती परम्परा के एक परिवार के माध्यम से सामंतीय व्यवस्था की विश्रृंखलता, शिक्षित मध्यवर्ग का उदय, फिर उसकी ध्वन्सोन्मुखता, पूँजीवाद का अभ्युदय और युग की परिवर्तनशीलता का नवोन्मेश की भावना के परिप्रेक्ष्य में यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत हुआ है । अतः 'भूले बिसरे चित्र' सोद्देश्य कलाकृति है । इस उपन्यास का उद्देश्य इसके नाम से ही स्पष्ट हो जाता है । लेखक का उद्देश्य गत पचास वर्षों के भारतीय जन-जीवन की सम्पूर्ण झांकी देनेका रहा है । लेखक ने गत युग का दर्शन एक परिवार की क्रमागत चार पीढ़ियों में जन्मे मुन्शी शिवलाल, ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद और नवल के माध्यम से किया है । इस में लेखक ने युग की विकृतियों का यथार्थ चित्रण किया है । उपन्यास के आरम्भ में सामन्तीय जमींदारी का वातावरण, बनियों के अभ्युदय, तत्पश्चात् पूँजीवाद का उदय और आर्थिक परिवर्तन, नैतिक उत्थान - पतन, अंग्रेजी शासन ने जो नौकरशाही पैदा की उसका मध्यवर्गीय समाज पर प्रभाव, सामाजिक रहन-सहन, पारिवारिक विघटन, राजनीतिक उथल-पुथल, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता तथा राष्ट्रीय एकता की अनिवार्यता इसमें सजीवतासे शब्दबध्द हुए हैं । इस तरह इसमें भारतीय जन-जीवन के अर्धशती के बदलते हुए रूपों का तथा जीवन मूल्यों का सजीव चित्र पूरी सम्भावनाओं के साथ उपस्थित किया गया है । लेखक का उद्देश्य यही है और इसमें उसे पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई है ।

उपन्यास में परिवर्तनशील युग का समस्त लेखा - जोखा प्रस्तुत करने का प्रयन्त किया गया है । उपन्यास के केन्द्रीय पात्र ज्वालाप्रसाद परिवर्तित परिस्थिति का गवाह है । वह आरम्भ से अन्त तक कथा का अभिन्न अंग बना गया है । उसके देखते ही देखते यह सारा परिवर्तन आ

जाता है । ज्वालाप्रसाद नये युग का व्यक्ति है इसलिए तो वह पूँजीपति लक्ष्मीचन्द का समर्थन करते हुए कहता है, "बप्पा, यह नया जमाना है । कोई खुद बढ़ईगीरी थोड़े ही करनी है । वह तो लकड़ी के काम का कारखाना खोलेगा । सैंकड़ो बढ़ई वहाँ नौकर होंगे । मशीन की मदद से काम होगा । अच्छे - से अच्छा नये फैशन का समान बनेगा ! लाखों का काम - काज हो सकता है । नई दुनिया का नया रूप होगा ।"[7] ज्वालाप्रसाद की मान्यताएँ अलग हैं । वह ईमानदार होते हुए भी न्यायप्रिय है । एक समय उसकी मान्यताएँ उसके पिता की मान्यताओं से टकराती हैं और इसकी परिणति मुन्शी शिवलाल के मृत्यु में होती है । इस प्रकार उपन्यास में पुरानी मान्यताओं पर नई मान्यताओं की विजय दिखाई गई है । यहाँ लेखक का दृष्टिकोण दिखाई देता है कि पुरानी मान्यताओं के शव पर ही नयी मान्यताएँ जन्म लेती हैं । इस प्रकार यह क्रम चलता ही रहता है । बदलते परिवेश के साथ नयी मान्यताएँ फिर पुरानी बन जाती हैं और उनके स्थान पर फिर नयी मान्यताएँ जन्म लेती हैं । एक मिटता है, उसके स्थान पर दूसरा जन्म लेता है; यह प्रकृति का नियम है । इस उपन्यास में लेखक का उद्देश्य इस सिध्दान्त की स्थापना करना भी रहा है ।

तीसरी पीढ़ी के गंगाप्रसाद की मान्यताएँ ज्वालाप्रसाद से भी भिन्न होती हैं । वह ईमानदार होते हुए भी व्यक्तिवादी अधिक है । अपने परिवार से दूर रहकर फिजूलखर्ची, मद्यपान, क्लबजीवन और वेश्यागमन जैसी अनगिनत बुराइयों में वह उत्तरोत्तर जकड़ता ही चला जाता है । वह अपने जीवन में भोग विलास और मस्ती को ही अधिक महत्व देता है और यही उसका जीवन दर्शन है । जहाँ मुन्शी शिवलाल और ज्वाला प्रसाद ने क्रमशः छिनकी और जैदेई से अवैध यौन सम्बन्ध स्थापित कर उनके जीवन पर्यन्त उनके साथ एकनिष्ठ रहे थे वहाँ मुक्त विहारी गंगाप्रसाद में वैसी स्थिरता नहीं थी । अपनी सुन्दर पत्नी के होते हुए वह कभी राधाकिशन की सुन्दर पत्नी संतो से तो कभी मलका नामक वेश्या से घनिष्ठ यौन सम्बन्ध रखता है । जीवन से संघर्ष करने के बजाय वह शराब के नशे में चूर रहता है और अपने जीवन में भयानक रूप में असफल हो जाता है । अपने टूटने का कारण स्वयं को बताते हुए वह नवल से कहता है, "जानते हो मैं क्यों टूटा और कैसे टूटा ? तुम ताज्जुब करोगे यह जानकर कि अपने को तोड़ने वाला स्वयं मैं हूँ । मेरे अन्दर वाली कायरता और उस कायरता की घुटन ने मुझे तोड़ दिया ।"[8]

गंगाप्रसाद का पुत्र नवल अपने परिवार के परंपरागत नौकरशाही पेशे को त्यागकर देशव्यापी नमक सत्याग्रह आन्दोलन में सक्रिय भाग लेता है । उसका जीवन दर्शन अपने परिवार के पूर्ववर्ती पुरूषों से एकदम भिन्न है । उसकी मान्यताएँ एकदम आधुनिक और मानवतावादी हैं । अपने जेल जाने के संदर्भ में वह कहता है, "मैं निराश होकर जेल नहीं जा रहा हूँ । जो रास्ता

मैंने अपनाया है उसकी यह परिणति है । संघर्ष - संघर्ष - संघर्ष । जीवन भर संघर्ष । यह संघर्ष मेरे अन्दर की पुकार है ।"[9] वह आगे कहता है कि, "मैं केवल अपने कारण अपने से प्रेरित होकर जेल जा रहा हूँ ।"[10] यहाँ उसके व्यक्तिवादी जीवन पर प्रकाश डाला गया है किन्तु उसका व्यक्तिवाद निराशावादी न होकर मानवतावादी है । इस संदर्भ में डा. सुरेश सिनहा का मंतव्य अप्रासंगिक न लगेगा कि, "भगवती बाबू ने अपने इस उपन्यास में व्यक्तिवादी मानवतावादी तत्वों के साथ परम्परागत भारतीय मानवतावाद के कुछ तत्वों का भी समावेश किया है - त्याग, अहिंसा, संयम, आत्मनिग्रह आदि, लेकिन वे संख्या में अधिक नहीं हैं । प्रायः सभी प्रमुख पात्रों के माध्यम से उन्होंने निजत्व, व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं वैयक्तिक अस्तित्व पर बल दिया है ।"[11] नवल की बहन विद्या भी परम्परागत भारतीय नारी की गुलामी से विद्रोह कर अपने पति का घर हमेशा के लिए छोडकर 'नारी शिक्षा सदन' में नौकरी करने लगती है । इतना बड़ा परिवर्तन ज्वालाप्रसाद के आँखों के सामने हो जाता है किन्तु इस परिवर्तन के मूल में क्या कारण है यह उसकी समझ में नही आता । एक समय जो युवक ज्वालाप्रसाद नवीन युग का व्यक्ति था वही नवल के पीढ़ी तक आते - आते अपने बुढ़ापे में पुराने युग का व्यक्ति बन जाता है । सारी परिस्थिति ही उसके बस के बाहर हो जाती है । वह न विद्या को नौकरी करने से रोक सकता है और न ही नवल को जेल जाने से । इस तरह उसके जिंदगी के सारे तजुर्बे नकाम होते हैं । इस दुनिया का बदला हुआ रूप जब उसके समझ में नही आता तो वह निराश होकर भीखू से कहता है, "नहीं समझ में आ रहा है भीखू, यह सब क्या हो रहा है । ये तरह-तरह के चित्र आप-ही-आप बनते हैं और मिट जाते हैं यह क्यों ?"[12]

उपर्युक्त एक परिवार के चार पीढ़ियों में समय के साथ आए परिवर्तन के साथ - साथ तत्कालीन सामाजिक परिवेश को भी अनेक तथ्यों के साथ उद्घाटित किया है । इसमें बीच-बीच में उन परिस्थितियों की तरफ संकेत किया गया है जो मनुष्य को पतित करती हैं और उसकी मानवता समाप्त करती हैं । भगवती बाबू इन विकृतियों के मूल में परिस्थिति को दोषी मानते हैं और उनपर प्रहार करते हैं । लक्ष्मीचन्द द्वारा पूँजीवाद का उदय, सामंती समाज की घोर विलासिता, नैतिक पतन, उच्च वर्ग में नारी द्वारा आर्थिक लाभ प्राप्ति की भावना, हिन्दू-मुस्लिम जातीय विवाद, वर्ग-संघर्ष दलितों की दयनीय स्थिति, उच्च वर्गीय स्त्रियों का नैतिक पतन, स्त्री-शिक्षा तथा नारी जाग्रति आदि अनेक तत्कालीन यथार्थ तथ्यों का अंकन लेखक ने अंकित किया है । इस प्रकार 'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास के उद्देश्य की महत्ता तथा व्यापकता स्वयंसिध्द है ।

आलोचकों ने इस उपन्यास पर भिन्न-भिन्न अभिप्राय प्रकट किये हैं । उनमें से डा. सुरेश सिनहा ने इस उपन्यास पर सर्वाधिक आक्षेप उठाकर उसमें त्रुटियाँ दिखलायी हैं, जो निम्नांकित है --

1. "इस उपन्यास में सामाजिक यथार्थ का व्यापक अथवा पूर्ण चित्रण नहीं हुआ है, जिससे ये रचना युग बोध को पूर्ण यथार्थ का आभास देने में भी असमर्थ है ।"
2. "इसमें मानव मस्तिष्क को चीरकर रखने की समर्थता नहीं है । युग जीवन को कोई दिशा प्रदान करने में भी यह उपन्यास सक्षम नहीं है ।"
3. "इस सामंती वर्ग में सेक्स के पीछे ईमान, सतीत्व और मर्यादाएँ किस प्रकार निलाम होती हैं तथा उन्हें अर्थलाभ के लिए किस प्रकार नीलाम किया जाता है - इन्हीं दो बिन्दुओं के मध्य अपने को सीमित कर लेखक ने जैसे सामंती वर्ग को चेतावनी देकर उसका सुधार करने की चेष्टा की है ।"
4. "इसकी सबसे बड़ी सीमा यह है कि उसमें कोई वैचारिक तीव्रता नहीं प्राप्त होती । उसमें यत्र - तत्र बिखरे हुए अनेक दृश्य चित्र हैं जिनका कुशल संयोजन करने में वर्माजी असफल रहे हैं । इसी कारण यह उपन्यास कोई समग्र प्रभाव छोड़ जाने में असमर्थ है ।"
5. "ये दृश्य - चित्र हमारे सामने जीवन के तीव्रतम घात-प्रतिघातां एवं मानसिक तनावों - उलझनों में कोई स्पष्ट तसवीर दे सकने में सफल नहीं हैं ।"
6. "इस लम्बी काल यात्रा में जिन आन्तरिक अनुभूतियों की तीव्रता की अनिवार्यता थी, एवं सामाजिक, मानसिक तथा वैयक्तिक संदर्भों मे मूल्य मर्यादा को परखने की आवश्यकता थी, उसका समावेश इस उपन्यास में नहीं हो पाया है ।"
7. "इस उपन्यास में जिन घटनाओं को सँजोया गया है, उनके पीछे कोई निश्चित लक्ष्य स्पष्टता एवं सशक्तता से उभर नहीं पाता ।
8. "विश्रृंखलित घटनाओं में जीवन की विसंगतियों एवं विषमताओं से प्रत्यक्षतः साक्षात्कार, वैचारिक तीव्रता की आन्तरिक अनुभूति एवं गतिशील आयामों में नए परिवर्तन के भावस्तरों का आभास नहीं होता । यह सारा संयोजन इतनपा सरल है कि कहीं भी आधुनिक जीवन की जटिलताओं से जूझने का प्रयत्न नहीं करता और केवल छिछली भावुकता एवं सतहीपन तक ही सिमटकर रह जाता है ।"
9. "इसमें कहीं भी मानवीय अनुभूति की विशिष्टता लक्षित नहीं होती और न कहीं मानव - मन

की गहराइयों में झाँककर मनुष्य की स्वाभाविक जटिल ग्रन्थियों का विश्लेषण करने का प्रयास ही है ।"

10. "इस उपन्यास में जो रोचक ब्यौरे उपस्थित किए गए हैं, उनमें कोई अन्तर्निहित उद्देश्य नहीं है ।"

11. "इसमें न कहीं चयन - शक्ति की समर्थता लक्षित होती है और न गहन अन्तर्दृष्टि की व्यग्रता । उपन्यास में बोध की व्यापकता एवं गहराई को लेखक की सहानुभूति का अभाव पूरी तरह खण्डित करता है और यही 'भूले बिसरे चित्र' को अविस्मरणीय या महत्वपूर्ण कृति का रूप नहीं दे पाता ।"[13]

डा. सिनहा के उपर्युक्त आक्षेपों को देखते हुए हमारे सामने यह प्रश्न उठते हैं कि आखिर इस उपन्यास की लोकप्रियता और सफलता के मूल में क्या रहस्य है ? क्या सचमुच यह उपन्यास छिछली भावुकता एवं सतहीपन तक ही सिमटकर रह गया है ? क्या इसमें मानव जीवन की कोई व्याख्या या नवीन जीवन मूल्य की स्थपना नही है ? क्या इसे युग की प्रतिनिधि रचना स्वीकार नहीं किया जा सकता ? किन्तु इन प्रश्नों के उत्तर हमें नकारात्मक दिखाई देते हैं । डा. सुरेश सिनहा के आरोपों में कुछ तथ्य अवश्य हैं किन्तु उन्हें पूर्ण सत्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता । इस उपन्यास में सामाजिक यथार्थ तथ्यों का सम्पूर्ण चित्रण नहीं है किन्तु इसमें अनेक तथ्यों का व्यापक तथा यथार्थ चित्रण अवश्य हुआ है । लेखक का अभीष्ट एक युग के सम्पूर्ण चित्रण की अपेक्षा एक परिवार के चार पीढ़ियों पर परिवर्तित परिस्थिति का प्रभाव स्थापित करना ही रहा है और लेखक को इसमें पर्याप्त सफलता भी प्राप्त हुई है । उपन्यास में केवल सामंती वर्ग तक ही अपने को सीमित किया है, यह तथ्य नहीं है बल्कि इसमें आद्योपांत अनेक सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक, पारिवारिक तथा वैयक्तिक तथ्यों का यथार्थ और स्वाभाविक चित्रण हुआ है । अतः डॉ. सुरेश सिनहा का दूसरा आरोप मिथ्या लगता है । उसी प्रकार उनके छठे आरोप में भी पूर्ण सत्य लक्षित नहीं होता । उपन्यासकार ने आन्तरिक अनुभूतियों एवं सामाजिक, मानसिक तथा वैयक्तिक संदर्भों में मूल्य मर्यादा को अवश्य परखा है । अतः इसमें वर्माजी की गहन अन्तर्दृष्टि स्पष्ट दिखाई देती है । इस संदर्भ में हमें डा. सुषमा गुप्ता का मत अधिक उचित प्रतीत होता है, "लेखक ने युग की विकृतियों के यथार्थ वर्णन के साथ - साथ आशा का संदेश देते हुए मानवतावदी दृष्टिकोण की स्थापना भी की है ।"[14] लाल रिपुदमनसिंह के शब्दों में, "यह दुनिया शिवप्रतापों से भरी है, जिनके इशारों पर स्त्रियाँ गिरती है, जिनके प्रभाव से परिवार टूटते हैं, जिनके कहने से हत्याएँ होती हैं । मैं चाहता हूँ इन शिवप्रतापों को चुन-चुनकर दुनिया से हटा दिया जाए । सुना गंगाप्रसाद, ये शिवप्रताप मानवता के अभिशाप हैं, ये मनुष्य की योनि में

साक्षात् पिशाच हैं ।"[15] अतः डा. सुरेश सिनहा का यह आरोप कि 'इस उपन्यास में सामजिक, मानसिक तथा वैयक्तिक संदर्भों में मूल्य मर्यादा को परखने की शक्ति नहीं है तथा इसमें जिन घटनाओं को सँजोया गया है, उनके पीछे कोई निश्चित लक्ष्य स्पष्टता एवं सशक्तता से उभर नहीं पाता' नितांत मिथ्या सिध्द होता है ।

उपन्यास के कुछ घटनाओं और प्रसंगों के पीछे कोई निश्चित लक्ष्य दिखाई नहीं देते जैसे - दंगल का आयोजन, शास्त्रस्त्र की घटना, धुण्डी स्वामी का प्रसंग आदि । किन्तु इसके बावजूद अन्य घटनाओं, प्रसंगों के पीछे कोई न कोई निश्चित लक्ष्य अथवा उद्देश्य स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है । डा. सिनहा के अन्य आरोप भी प्रस्तुत उपन्यास का सही मूल्यांकन करने में हमें असमर्थ लगते हैं । इसमें जीवन की विसंगतियों एवं विषमताओं से प्रत्यक्षतः साक्षात्कार, वैचारिक तीव्रता की आन्तरिक अनुभूति एवं गतिशील आयामों में नए परिवर्तन के भावस्तरों का आभास नहीं होता', यह कहना उपन्यासकार के प्रति अन्याय होगा । अतः हमारे मतानुसार 'साहित्य अकादमी' द्वारा पुरस्कृत 'भूले बिसरे चित्र' चित्रलेखा' के बाद विशिष्ट गरिमा से मण्डित भगवती बाबू की सवश्रेष्ठ कृति तथा हिन्दी साहित्य की अविस्मरणीय रचना प्रक्रिया में महत्वपूर्ण उपलब्धि है । डा. रमाकान्त श्रीवास्तव का कथन है, "भूले बिसरे चित्र' 'टेढ़े रास्ते', 'सीधी-सच्ची बातें' तथा 'प्रश्न और मरीचीका' ये चार उपन्यास आधुनिक भारत को पूरी तरह परखने का प्रयास हैं । ये चार उपन्यास अपने कथानक और पात्रों की विभिन्नता के कारण अपने - आपमें स्वतंत्र उपन्यास हैं किन्तु वस्तुतः भारतीय आधुनिक इतिहास पर भगवती बाबू की समग्र दृष्टि ही चार उपन्यासों में व्यक्त होती है । ये चारों उपन्यास स्वतंत्र होकर भी एक-दूसरे की कड़ी हैं । वस्तुतः यह उपन्यास पैनोरमिक और सरितोपम दोनों की ही सीमाओं को छूते हैं ।"[16]

वर्माजी ने इस उपन्यास में एक परंपरागत परिवार के जिन चार पीढ़ियों के बदलते जीवन मूल्यों तथा मान्यताओं के साथ - साथ जिन सामाजिक तथा राजनीतिक उथल-पुथल को शब्दबध्द किया है, वह उनकी कलात्मकता और गहनअन्तर्दृष्टि का द्योतक है । यह सत्य है कि लेखक ने इस उपन्यास में युग जीवन को सम्पूर्ण आयामों के साथ समग्रता से चित्रित करने का भरसक प्रयास किया है किन्तु उस परिवर्तनशील युग का समग्र चित्र देने में वर्माजी को पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है । इसमें कुछ न्यूनताएँ रह ही जाती हैं फिर भी डा. देवीशंकर अवस्थी के शब्दों में, हम कह सकते हैं, " वस्तुतः इस उपन्यास में जिस बीती हुई अर्ध्दशती के भूले बिसरे चित्रों को पुनः याद के सहारे अंकित किया गया है, वे अपनी रोचकता में हमें आकर्षित करते हैं । प्रस्तुत

उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य की एक सफल कृति है, अपने ढंग से यह प्रेरक भी है और ज्ञानवर्द्धकब भी ।"[17]

उपन्यास में नवल के माध्यम से इस तथ्य का उद्घाटन हुआ है कि आत्मनिर्णय का क्षण ही मानव मुक्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है । नवल के सारे सपने यथार्थ की कठोर पगडंडियों के टकराव से टूट जाते हैं किन्तु वह निराश होकर अपनी हार स्वीकार नहीं करता । वह अन्त तक संघर्ष करता है और अपने समस्त ऐश्वर्य को त्यागकर देशव्यापी स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेता है । इस प्रकार इस उपन्यास के माध्यन से लेखक ने प्रस्थापित व्यवस्था की विसंगतियों, विषमताओं तथा अन्तर्विरोधों को भी प्रहार का लक्ष्य बनाया है । प्रेमचन्द की तरह उपयोगितावादी उपन्यासकार होने के कारण वर्माजी के अनुभवों की समृध्दता और सम्पन्नता, अध्ययन की व्यापकता और गहनता तथा चिंतन की प्रौढ़ता का बड़ा ही आकर्षक और संवेदनशील दृश्य तथा मन की पूरी ईमानदारी के साथ युग जीवन और युग यथार्थ का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है । वे समस्याओं का विश्लेषण तो करते जाते हैं किन्तु जहाँ उपन्यास का अन्त होता है वहाँ न तो उन समस्याओं का समाधान होता है और नहीं उन समस्याओं का अन्त होता है । आलोच्य उपन्यास में तद्युगीन तथा शाश्वत जिन समस्याओं पर प्रकाश ड़ाला है, उनमें से प्रमुख समस्याऐं निम्नांकित हैं --

1. सामन्ती जीवन के टूटने की समस्या -- उपन्यास में बरोजरसिंह, गजराजसिंह, राजा चन्दभूषणसिंह, राजा सत्यजीत प्रसन्नसिंह आदि पात्रों के माध्यम से सामंती जीवन की विसंगतियों का चित्रण हुआ है । यह सामन्त वर्ग अपनी घोर विलासिता, नैतिक पतन तथा अनाप-शनाप फिजूलखर्ची के कारण बनियों के सूद-दर सूद के कर्ज तले न्हासोन्मुख होने लगा था । उपन्यास में वणिक जाति का बनिया प्रभुदयाल बरजोरसिंह और ठाकुर गजराजसिंह को निगल जाता है । इस प्रकार उपन्यास में सामन्त वर्गीय समाज की ध्वंसोन्मुख स्थिति दिखलाकर उसके शव पर पूँजीवाद का उदय दिखलाया गया है । एक स्थान पर ठाकुर गजराजसिंह सामंजी जवीन के टूटने का दर्द महसूस करते हुए कहते हैं, "राज-कुल वालों को किसानी करनी पड़े, यह सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात है । लेकिन किया क्या जाए, समय सब-कुछ करवा लेता है । विधाता का लिखा कहीं कोई काट सकता हैं ।"[18] वर्माजीने यहाँ सामन्त वर्गीय मान्यताओं पर प्रहार किया है और उनके टूटने की समस्या और विवशता का कारण नियति पर छोड दिया है ।

2. आर्थिक विषमता की समस्या -- उपन्यास में अर्थ की समस्या प्रधान रूप से उभरकर आई है इस युग में अंग्रेजी शासन की जड़े भारत में मजबूत होने के पश्चात भारत का भयानक

आर्थिक शोषण हो गया था और पूँजीवाद को बढ़ावा मिला था । इस तरह उस युग में अंग्रेज ही एक बहुत बड़ा पूँजीपति बन बैठा था । इसका लाभ कई अर्थ-पिपासु भारतीयों ने भी उठाया । लक्ष्मीचन्द इसका अच्छा उदाहरण है । उपन्यास के अनेक प्रमुख पात्रों को अर्थ ही बिगाड़ता है । इतना ही नहीं पति-पत्नी के सम्बन्ध भी अर्थपर ही निर्भर हैं । लक्ष्मीचन्द देखते ही देखते बेईमानी और जालसाजी से लाखों रूपये इकट्ठा करता है और कई मिलों और कारखानों का मालिक बन जाता है । इन लोगों के लिए अर्थ ही धर्म, ईमान बन गया था । इस युग में सत्ता भुजबल में नहीं रूपये में थी । अतः आर्थिक दृष्टि से समर्थ कुछ लोगों के पास ही सत्ता केन्द्रिभूत थी । रूपये के बल पर यह उच्च वर्ग सरकारी अफसरों को भी अपनी ओर कर लेते थे और अपना कोई भी उचित - अनुचित कार्य आसानी से साध्य कर लेते थे । पूँजीपति लक्ष्मीचन्द ने यही किया था । एक स्थान पर ज्ञानप्रकाश इस पर व्यंग्य करते हुए कहता है, "यह पूँजीपति जबरदस्त मुनाफा उठाता है । उस मुनाफे का एक छोटा - सा हिस्सा सरकार को देता है, ताकि सरकार से उसे हर तरह की सुविधाएँ मिलें । इस मुनाफे का छोटा हिस्सा वह देता है कांग्रेस को, ताकि स्वदेशी का आन्दोलन जोर पकड़े और उसका माल जोरों के साथ बिके । इस मुनाफे का छोटा - सा हिस्सा देता है गंगाप्रसाद ज्वाइंट मजिस्ट्रेट को ताकि लक्ष्मीचन्द्र जो लूट - खसोट, बेईमानी करता है, उसके बारे में सरकारी कर्मचारी आँखे बन्द कर लें । रूपया इस युग की सबसे बड़ी मजबूरी है ।"[19] इस प्रकार उपन्यास में आर्थिक विषमता पर प्रहार करते हुए पूँजीवाद पर चोटें की गयी हैं ।

3. मध्यवर्गीय नौकरशाही की समस्या -- ब्रिटिश शासन काल में जो नौकरशाही परंपरा पैदा हुई उसके मूल में भी मध्यवर्गीय जीवन की आर्थिक विषमता ही थी । तत्कालीन अंग्रेजी पढ़े - लिखे मध्य-वर्गीय युवकों की एकमात्र इच्छा सरकारी नौकरी की प्राप्ति थी । इसके लिए भारतीय लोग अंग्रेज अधिकारियों की खुशामद किया करते थे । मुंशी शिवलाल की खुशामद से ज्वालाप्रसाद नायब तहसीलदार बन गया था और आगे चलकर उसकी खुशामद से ही गंगाप्रसाद डिप्टी कलक्टर से कलक्टर बन गया था । उपन्यास में ज्वालाप्रसाद, गंगाप्रसाद और नवल के माध्यम से मध्यवर्गीय नौकरशाही के उदय, विकास और उसकी विशृंखलता पर प्रहार किया है । गंगाप्रसाद इस परम्परा का चरमबिन्दु है किन्तु इसके साथ ही वह अनेक अनैतिक बुराईयों में मस्त रहता है । परिणामतः उसका पुत्र गंगाप्रसाद इस नौकरशाही व्यवस्था से विद्रोह करता है और इस परंपरा का अन्त भी । नवल तक आते-आते आधुनिक युग में मध्य वर्गीय बेकारी की समस्या गंभीर रूप धारण कर चुकी थी जो आज भी भयानक

रूप में विद्यमान है । इन आधुनिक शिक्षित नवयुवकों की तरफ संकेत करते हुए प्रेमशंकर कहता है, "परीक्षा पास करना, अच्छा डिवीजन पाना और फिर नौकरी की तलाश में दर-दर घुमना । मुझे तो यह सब देखकर कुछ अजीब - सा लगता है; कितनी विड़म्बना है इस सबमें ।"[20] उपन्यास में नवल और प्रेमशंकर के माध्यम से लेखक ने आधुनिक युवकों के सामने स्वावलंबी जीवन जीने की प्रेरणा दी है ।

4. यौन नैतिकता की समस्या -- 'भूले बिसरे चित्र' में अनैतिक यौन समस्या प्रखरता से उभरी है । डा. सुरेश सिनहा के मतानुसार, "व्यक्ति की अतृप्ति की भावना और उसकी कामइच्छा की तीव्रता तथाकथित उच्चवर्गीय सामंती समाज में किस प्रकार भीषण रूप में वर्तमान रहती है, और वहाँ पाप-पुण्य तथा नैतिक - अनैतिकता अर्थिक आधार पर किस भाँति मूल्यहीन रहती है, इस उपन्यास में इसकी ओर विशेष ध्यान दिया गया है । इस उपन्यास की मूल समस्या यही है ।"[21] यह रूग्ण परंपर जो मुन्शी शिवलाल और छिनकी से प्रारम्भ होती है वह ज्वालाप्रसाद - जैदेई, गंगाप्रसाद - संतो - मलका, मेजर वाट्स - संतो, राजा सत्यजीत प्रसन्नसिंह - संतो, राधाकिशन - कैलासो, शिवप्रताप और रिपुदमनसिंह की पत्नी आदि के द्वारा अन्त तक चलती रहती है । वर्माजी ने इस समस्या के पीछे स्त्री की अतृप्त काम वासना और पुरूषों की स्त्रियों के द्वारा आर्थिक लाभ प्राप्त की भावना को प्रमुख रूप से दोषी माना है और उन्हीं को अपने प्रहार का लक्ष्य बनाया है ।

5. संयुक्त परिवार के विघटन की समस्या -- आलोच्य उपन्यास एक परिवार पर ही अधिक केन्द्रित रहा है । इसमें एक ही परिवार में जन्मे मुंशी शिवलाल से नवल तक के चार पीढ़ियों की कथा के माध्यम से बदलती परिस्थिति के साथ उसका विघटन दिखाया है । मुंशी शिवलाल संघटित परिवार प्रथा में विश्वास करते थे । वे स्वयं विधुर होते हुए भी राधेलाल की पत्नी को घर की मालकिन मानते थे । छिनकी द्वारा इसमें हस्तक्षेप करने पर वे कहते हैं - "कुछ भी हो जाए, घर की मालकिन छोटी है, समझी । जब तक राधे की बीवी जिन्दा है और यहाँ पर है तब तक इस घर की मालकिन वही रहेगी, यह भी समझ ले ।"[22] मुशी शिवलाल अन्त तक अपने परिवार को संघटित रखने का प्रयत्न करते हैं किन्तु इस परिवार के विघटन का क्रम ज्वालाप्रसाद के पीढ़ी से ही आरम्भ होता है । नौकरीके लिए उसे अपने परिवार से पत्नी के साथ दूर रहना पड़ता है । उसके मन में अपने परिवार वालों के प्रति आत्मीयता है परन्तु अपने चाचा और उनके आवारे, निकम्मे बेटों के साथ गुजारा करना उसके लिए असंभव-सा हो जाता है और उसे अपनी इच्छा के विरूद्ध

अपने संयुक्त परिवार का विघटन करना पड़ता है । अपने परिवारवालों के प्रति जो आस्था ज्वालाप्रसाद में शेष थी उसका गंगाप्रसाद में पूर्ण अभाव दिखाई देता है । वह संयुक्त परिवार से दूर और मुक्त जीवन जीने में ही विश्वास करता है । वह नौकरी के सिलसिले में आए अपने चचेरे भाई बंसीधर को पहचानने से भी इनकार करता है । उसके संदर्भ मे वह ज्ञानप्रकाश से कहता है, "देख रहे हो चचाजान, इस जंगली को बप्पा ने मेरे पास भेजा है । शक्ल देखी तुमने इसकी, हैवानियत बरस रही है चेहरे पर । और जी हाँ, यह मेरे बिरादर हैं । जौनपुर में मेरे भाई होने का ढोल पीटते घूमेंगे; मैं तो शरम से गड़ जाऊंगा । अजीब मुसीबत में डाल दिया है बप्पा ने ।"[23] इस प्रकार उपन्यास में संयुक्त परिवार का क्रमागत चित्रण हुआ है और लेखक ने उसके विघटन के मुल में परिस्थिति को ही जिम्मेदार माना है ।

6. राजनीतिक चेतना की समस्या -- मुगल शासन के समाप्ति के बाद अंग्रेजों ने पूरे हिन्दुस्तान पर अपना आधिपत्य स्थापित किया था और पूरे देश में आदालती कारोबार फैला दिया था । अंग्रेजों ने भारत का आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक शोषण किया । इसके कारण इस देश की असंख्य जनता अपने अधिकार और स्वतंत्रता से वंचित रह गई । अंग्रेज लोग भारतीय लोगों को अछूत, जंगली और असभ्य मानकर उनकी विड़म्बना करते थे और करोड़ों भारतीय लोग इसे अपना भाग्य समझकर चुप-चाप सहते थे । एक प्रकार से यह जनता निष्क्रिय थी कुछ पढे-लिखे तथा विदेश में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त ज्ञानप्रकाश जैसे नवयुवकों को अपनी दासता, गुलामी खलती थी । महात्मा गांधी के भारत आगमन से राष्ट्रीय चेतना जागृत हो गई । फलतः उनके नेतृत्व में कांग्रेस के विभिन्न अधिवेशन हुए । देश की स्वतंत्रता के लिए असहयोग आन्दोलन, सत्याग्रह आन्दोलन तथा देशव्यापी नमक सत्याग्रह आन्दोलन हुए । ज्ञानप्रकाश, फरहतुल्ला, सत्यव्रत जैसे सच्चे कांग्रेसी तथा गांधीवादी व्यक्ति भारतीय जनता में राष्ट्रीय जागृति की लहर फैला रहे थे । किन्तु भारतीय पूँजीपति ही इस आन्दोलन की रीढ़ थी क्यों कि ब्रिटिश पूँजीवाद का सबसे बड़ा शत्रु हिन्दुस्तानी पूँजीपति था । एक स्थान पर ज्ञानप्रकाश कहता है, 'हिन्दुस्तान का पूँजीपति ही हमारे इस आन्दोलन की रीढ़ है । हमारे आन्दोलन को चलाने के लिए रूपया चाहिए और यह रूपया हमें देश के पूँजीपति से ही मिल सकता है, क्यों कि अंग्रेजों की हुकूमत ब्रिटिश पूँजीवाद की हुकूमत है ।'[24] ये आन्दोलन कभी तो जोर पकडते थे और कभी हिन्दू - मुस्लिम आपसी मतभेद के कारण शिथिल पड़ जाते थे । इस प्रकार उपन्यास में राष्ट्रीय एकात्मता और नव निर्माण का संकेत

तो' दिया है किन्तु उनसे सम्बन्धित प्रश्नों का समाधान वैयक्तिक स्तर पर ही ढूँढने का प्रयास हुआ है ।

7. हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या -- वर्माजी ने प्रस्तुत उपन्यास में हिन्दू-मुस्लिम समस्या पर भी प्रकाश डाला है । यह समस्या हमारे देश के स्वतंत्रता आन्दोलन से भलि-भाँति जुड़ी हुई है । साम्प्रदायिक दंगों, आपसी कलह, ईर्षा-द्वेश की भावना तथा अंग्रेजों द्वारा एक-दूसरे को भड़काने के कारण इन दो जातियों में कभी एकता स्थापित न हो सकी । वस्तुतः देश की स्वतंत्रता के लिए हिन्दू-मुस्लिमों को एक साथ लड़ने की आवश्यकता थी । स्वतंत्रता - संग्राम के दौरान कुछ समय तक यह एकता की भावना बनी रही । फरहतुल्ला जैसे कुछ कांग्रेसी नेता इसके लिए आगे भी आए किन्तु वे अपने जातीय दायरे से बाहर नहीं निकल सके । परिणामस्वरुप हिन्दू-मुस्लिम कट्टरता कायम रह गई । इसका फायदा उठाया अंग्रेजों ने । उपन्यास में जहाँ रुक्मा और मीर साहेब के माध्यम से जातीय कट्टरता दिखाई है वहाँ मलका और सत्यव्रत के माध्यम से उसकी भावात्मकता दिखाई है । रुकमा सब पाशवी अत्याचार सहकर भी मुस्लिम धर्म स्वीकार नहीं करती वहाँ मलका हिन्दू धर्म स्वीकार करके सत्यव्रत से विवाह करती है । डा.सुरेश सिनहा का कथन है कि, "हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य का मूल कारण भी भगवती बाबू ने परिस्थितियों में खोजने की चेष्टा की है और उन परिस्थितियों से विद्रोह एवं क्रान्ति की प्रेरणा दी है ताकि हिन्दूओं और मुसलमानों का भेदभाव एकबारगी से मिट सके ।" [25]

8. छुआछूत की समस्या -- उपन्यास में पुराणपंथी ब्राह्मणों और चमारों तथा गेंदालाल, छिनकी, घसीटे आदि पात्रों के माध्यम से अछूतों की समस्या उठायी गयी है । किन्तु इसका समाधान भी वैयक्तिक स्तर पर ही खोजनेकी चेष्टा की गई है । ज्वालाप्रसाद बड़े जोरों के साथ पुराणपंथी ब्राह्मणों से अछूतों के लिए कुओं से पानी लाने के अधिकार के लिए संघर्ष करता है और उन्हें मानवीय ढंग से लिए जाने पर बल देता है । ज्ञानप्रकाश भी चमार गेंदालाल को मानवतावादी दृष्टि से देखता है । वह इस अमानवीय छुआछूत की भावना को समाज से एकबारगी -ही मिटा देना चाहता है । किन्तु गंगाप्रसाद जैसा पढ़ा-लिखा आधुनिक युवक गेंदालाल को अपने कमरे में देखकर भड़क उठता है और उसका अपमान कर घर से बाहर कर देता है । एक स्थान पर ज्ञानप्रकाश गेंदालाल से कहता है, "नहीं गेंदालालजी, आप अपने को अछूत न कहिए । हम सवर्णों ने मनुष्य का जो गला घोंटा है, आप लोगों पर जो

अत्याचार किया है उसका दुःष्परिणाम हमने हजार वर्ष की गुलामी में भोगा । और आज तो हमारे देश का बच्चा-बच्चा अपमानित और अछूत है ।"[26] इन दलितों में यह धारणा बराबर बनी रही है कि हम अछूत हैं, निम्न जाति के हैं, हम उच्च कुल वालों की बराबरी नहीं कर सकते, हमारे छूने से उच्च कुल वालों का परलोक बिगड़ जाता है और प्रकारान्तर से यही इस समस्या का मूल कारण भी है । कहार जाति की छिनकी इसी भावना से दबी रहती है । जब मुंशी शिवलाल उसे खाना बनाने को कहते हैं तो वह कहती है, "तुम्हारे हाथ जोड़ित हन, ई पाप हमसे न कराओ हम चौका माँ न घुसब । तुम्हार परलोक हमारे हाथ न बिगड़े ।"[27] इस प्रकार उपन्यास में दलितों की समस्या चित्रबध्द हुई है ।

9. विवाह की समस्या -- हमारे देश में हिन्दू-मुस्लिम समस्या के बाद विवाह की समस्या प्रधान सामाजिक समस्या बन गई है । विद्या के विवाह प्रसंग द्वारा इस समस्या का उद्घाटन हुआ है । ज्वालाप्रसाद अपनी पौत्री विद्या का विवाह पन्द्रह हजार रुपये दहेज में देकर बिन्देश्वरी के साथ करता है । इस दहेज में उसका घर तबाह होता है । शादी के बाद विद्या पर अनेक अत्याचार होते हैं और अन्त में वह अपने ससुरालवालों के अत्याचारों से तंग आकर अपने पति का घर हमेशा के लिए छोड़ आती है । उपन्यास में सामंती समाज में बेटा-बेटियों के शादी-ब्याह में हजारों रुपये कर्ज लेकर अनाप-शनाप खर्च करने की प्रवृति पर भी प्रकाश डाला गया है । इसके साथ-साथ छिनकी और घसीटे के माध्यम से अनमेल विवाह की समस्या और उसके दुःष्परिणामों की भी चर्चा की गई है ।

उपर्युक्त अनेक समस्याओं के साथ-साथ रुकमा के माध्यम से नारी क्रय-विक्रय की समस्या, मलका द्वारा वेश्या समस्या तथा विद्या द्वारा नारी शिक्षा तथा आत्मनिर्भर जीवन जीने की समस्या का भी उद्घाटन हुआ है । इस प्रकार उपन्यास में अनेक समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है । इन समस्याओं के मूल में उपन्यासकार ने परिस्थिति को दोषी ठहराया है और व्यक्तिगत स्तर पर ही उनका समाधान ढूँढने का प्रयास किया है । एक स्थान पर जैसे लेखक का व्यक्तिवादी जीवनदर्शन ज्ञानप्रकाश के मुँह से मुखरित हो उठा है, "परिस्थिति और आधारभूत व्यक्तित्व । बाबू गंगाप्रसाद आधारभूत व्यक्तित्व में देवता होता है, दानव होता है । नेकी और बदी, क्रिया और प्रतिक्रिया के रुप में हर एक व्यक्ति के भाग हैं । अन्तर इतना है कि यह आधारभूत व्यक्तित्व परिस्थिति के अनुसार अपने को प्रकट करता है ।...... व्यक्ति की आधारभूत प्रवृतियाँ विशेष परिस्थितियों में उभरेंगी ही ; उभारने के लिए यदि तुम साधन न बने होते तो कोई दूसरा साधन बन गया होता आदमी कुछ नहीं करता जो कुछ करवाती हैं के परिस्थितियाँ ही कराती हैं ।"[28]

संदेश :

'भूले बिसरे चित्र के प्रमुख पात्रों के जरिये परोक्ष रूप में लेखक ने महत्वपूर्ण संदेश दिए हैं वर्माजी ने यह संदेश दिया है कि जीवन के किसी मोड़ पर आकर भोक्ता को यह निर्णय करना होगा कि उसे किस दिशा में अग्रसर होना है । जीवन में उसे कितने समझौते करने होंगे और पुरानी मान्यताओं से उसे किस प्रकार मुक्ति पाना है । एक स्थान पर विद्या कहती है, "मैं समझती हूँ कि जीवन समझौता है । लेकिन हर समझौते में दो पक्ष होते हैं । जहाँ तक मेरा पक्ष है, मैं मान और मर्यादा पर कायम रहूँगी ।"[29]

गंगाप्रसाद का जीवन उसके अनेक खानदानी तथा वैयक्तिक बुराइयों के कारण असमय ही समाप्त हो जाता है । उसके माध्यम से लेखक ने आधुनिक युवकों को यह चेतावनी दी है कि मनुष्य अपने दुःखों को भूलने के लिए वेश्यागमन, मदिरापान करेगा तो वह निश्चित ही मृत्युरूपी दलदल में फँसता जाएगा । नवल के माध्यम से लेखक यह बताना चाहता है कि आत्मनिर्णय का क्षण ही जीवन को सार्थक बनाता है । जीवन में जय-पराजय महत्वपूर्ण नहीं है, मनुष्य का कर्म करते रहना महत्वपूर्ण है । नवल का जीवन संघर्ष का जीवन है किन्तु वह अपनी संघर्षशील जिजीविषा में जीकर भी अपना जीवन सार्थक बनाता है । इस प्रकार नवल के माध्यम से लेखक ने नवयुवकों के सामने जीवन भर संघर्ष करते रहने का संदेश दिया है ।

लेखक ने विद्या और मलका के माध्यम से नारी जाग्रति का संदेश दिया है । मलका के माध्यम से लेखक यह बताना चाहता है कि वेश्या भी समाज में वैवाहिक जीवन का आरम्भकर अपने नरकतुल्य जीवन को समाप्त कर सकती है ; इसके लिए पुरुषों के मन में भी उनके प्रति आत्मीयता की भावना आवश्यक है ।

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक परिवार के स्तर से राष्ट्रीय धरातल पर पहुँचा है, जहाँ जननजीवन में स्वतंत्रता का स्वप्न आलोकित हो उठा है और जनता उद्योग के पथ पर अग्रसर है । उपन्यास का अन्त एक विराट चेतना और जनजागरण में होता है, "दो बूढ़े, जिन्होंने युग देखा था, जिन्दगी के अनेक उतार-चढ़ाव देखे थे जिन्होंने, जिनके पास अनुभवों का भण्डार था, विवश थे, निरुत्तर थे और दूर हजारों, लाखों, करोड़ों आदमी जीवन और गति से प्रेरित, नवीन उमंग और उल्लास लिये हुए एक नवीन दुनिया की रचना करने के लिए चले जा रहे थे ।"[30] इसी में उपन्यास का अन्तिम तथा महत्वपूर्ण संदेश निहित है । इसके द्वारा लेखक ने नव-निर्माण की लालसा का, प्रगतिशीलता का संकेत किया है । अतः "अपनी विस्तृति और रोचकता तथा पीढ़ीगत सामाजिक परिवर्तनों का दर्पण होने कारण 'भूले बिसरे चित्र' की समता हिन्दी साहित्य में 'बूँद और समुद्र', 'झूठा-सच' मैला

आंचल' 'अलग-अलग बैतरणी' 'राग दरबारी' जैसी शक्तिशाली कृतियां ही कर सकती हैं । यह स्वीकार करना ही होगा कि वर्तमान से से जुड़े हुए निकट अतीत का समग्रता से चित्रित करने का प्रयास इस उपन्यास में किया गया है ।"[31] डा. रमाकान्त श्रीवास्तव का यह मंथन यथायोग्य है । डा. शंकर मुदगल प्रस्तुत उपन्यास को महाकाव्यात्मक उपन्यास सिध्द करते हुए लिखते हैं, "पचास साल की जीवन गाथा के माध्यम से राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और नैतिक परिस्थितियों का विस्तृत चित्रण, जीवन मूल्यों में होने वाले निरन्तर परिवर्तन आदि ने रचना को विशाल पट दिया है । इस विशाल पट के आधार पर अपने लक्ष्य की पूर्ति में लेखक को गजब की सफलता मिली है । अतः कथावस्तु की विराटता, विश्रृंखलता और उदात्तता, असंख्य मार्मिक प्रसंग और महान लक्ष्य का प्रतिपादन आदि तत्वों की दृष्टि से भगवतीचरण वर्मा का 'भूले बिसरे चित्र' हिन्दी का सशक्त एवं सफल महाकाव्यात्मक उपन्यास है ।"[32]

निष्कर्ष :

औपन्यासिक कलाकृति की श्रेष्ठता उसके निरूपित उद्देश्य में निहित होती है । आज के उपन्यासों का उद्देश्य केवल मनोरंजन करना न होकर मानव जीवन के विविध क्षेत्रों से सम्बन्धित भिन्न-भिन्न समस्याओं का उद्घाटन करना हो गया है । 'भूले बिसरे चित्र' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है । प्रस्तुत उपन्यास मनोरंजक होते हुए भी समस्या प्रधान है । इसका उद्देश्य निश्चित कथ्य को आकर्षक एवं कलात्मक ढंग से संप्रेषित करना है ।

'भूले बिसरे चित्र' उपन्यास में युगीन सामजिक मान्यताओं का यथार्थ तथा मार्मिक चित्रांकन हुआ है । इसका उद्देश्य एक मध्यमवर्गीय परिवार के चार पीढ़ियों को केन्द्र में रखकर गत पचास वर्षों के भारतीय जीवन को बदलते परिप्रेक्ष्य में समग्रता से चित्रित करना रहा है । वर्माजी आधुनिक युवा पीढ़ी के सामने मानवतावादी यथार्थ जीवन दृष्टि रखते हैं । जीवन में संघर्ष महत्वपूर्ण है । विपरीत परिस्थितियों में भी निराश न होकर बराबर संघर्ष करते रहना और अपना मार्ग प्रशस्त करना ही मानव जीवन को सार्थकता प्रदान करता है । आत्मनिर्णय का क्षण ही मानव मुक्ति की दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है । विपत्तियों से संघर्ष करने के लिए विद्रोही तथा आक्रामक वृत्ति चाहिए । यह उद्देश्य 'भूले बिसरे चित्र' में सफलता से प्रस्तुत हुआ है ।

लेखक ने सामाजिक समस्याओं के साथ - साथ युगीन परिवेश और शाश्वत प्रश्नों पर भी विचार व्यक्त किए हैं । इन समस्याओं में नवीन मूल्य स्थापित करने की शक्ति पर्याप्त मात्रा में

है । मध्यमवर्गीय जीवन की समस्याओं का समाधान वर्माजी ने अपने जीवन दृष्टि की मान्यताओं के अनुसार नवल तथा विद्या के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । प्रस्तुत उपन्यास में लेखक व्यक्ति, परिवार और समाज के माध्यम से राष्ट्रीय धरातल पर पहुँचा है जहाँ नवनिर्माण की लालसा तथा प्रगतिशीलता आलोकित हो उठी है । सम्पूर्ण उपन्यास में लेखक का व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी स्वर प्रधान है । लेखक ने मानव जीवन की सफलता - असफलता तथा युगपरिवर्तन का दायित्व भी नियति पर छोड़ दिया है और इसके मूल में परिस्थिति को दोषी ठहराया है । कुल मिलाकर 'भूले बिसरे चित्र' एक विशालकाय युग जीवन को समेटने की शक्ति रखता है । इसमें कई न्यूनताएँ होते हुए भी उद्देश्य की दृष्टि से भगवती बाबू की रचना प्रक्रिया में 'मील का पत्थर' तथा स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास साहित्य में अन्यतम कृति सिध्द होती है ।

x x x

संदर्भ संकेत सूची

1. टंडन प्रतापनारायण, डा. हिन्दी उपन्यास कला, पृ. 354
2. - वही - पृ. 355
3. वर्मा भगवतीचरण, साहित्य के सिध्दान्त तथा रूप, पृ. 35
4. - वही - पृ. 3
5. - वही - पृ. 180
6. टंडन प्रतापनारायण डा., हिन्दी उपन्यास कला, पृ. 348
7. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 127
8. - वही - पृ. 594
9. - वही - पृ. 707
10. - वही - पृ. 707
11. सिनहा सुरेश डा., हिन्दी उपन्यास, पृ. 292
12. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 712
13. सिनहा सुरेश डा., हिन्दी उपन्यास, पृ. 293-94-95
14. गुप्ता सुषमा डा., हिन्दी उपन्यासों में महाकाव्यात्मक चेतना, पृ. 301
15. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 306
16. श्रीवास्तव रमाकान्त डा., व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में उपन्यासकार भगवतीचण वर्मा, पृ. 280
17. मोहन नरेन्द्र सं., आधुनिक हिन्दी उपन्यास, पृ. 204
18. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 96
19. - वही - पृ. 495
20. - वही - पृ. 607-8
21. सिनहा सुरेश डा., हिन्दी उपन्यास, पृ. 293
22. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 132
23. - वही - पृ. 421
24. - वही - पृ. 494

25. सिनहा सुरेश डा., हिन्दी उपन्यास, पृ. 292

26. वर्मा भगवतीचरण, भूले बिसरे चित्र, पृ. 479

27. - वही - पृ. 118

28. - वही - पृ. 359

29. - वही - पृ. 624

30. - वही - पृ. 712

31. श्रीवास्तव रमाकान्त डा., व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा, पृ. 133

32. मुदगल शंकर वसंत डा., हिन्दी के महाकाव्यात्मक उपन्यास, पृ. 174

* * *